यह काला रंग बनाया ही क्यों?

डॉ. अरविन्द गुप्ते

भारतीय समाज में बहुत प्राचीन काल से यह धारणा जड़ जमाए हुए है कि गोरापन अच्छा होता है और सांवलापन खराब। वह गाना याद है न 'राधा क्यों गोरी, मैं क्यों काला'। इस धारणा का भरपूर फायदा आजकल गोरेपन की क्रीम बनाने वाली कंपनियां उठा रहीं हैं और लाखों करोड़ों रुपए का मुनाफा कमा रही हैं। इनके द्वारा यह बात छुपा दी जाती है कि गोरेपन की इन दवाओं से कुछ समय के लिए चेहरा भले ही थोड़ा उजला नज़र आए, यह गोरापन अस्थाई होता है और त्वचा कुछ ही दिनों में अपने मूल रंग पर लौट आती है। इसके अलावा, गोरेपन की दवाओं में ऐसे रसायन होते हैं जो शरीर के लिए, विशेष रूप से त्वचा के लिए, हानिकारक होते हैं। किंतु आज हज़ारों लोग, विशेष रूप से युवा, यह सवाल पूछ रहे होंगे कि प्रकृति ने (या भगवान ने) यह काला रंग बनाया ही क्यों?

बहुत ही अच्छा सवाल है और गहरा भी है, क्योंकि इसका उत्तर खोजने के लिए हमें मानव की विकास यात्रा में लगभग 50 लाख वर्ष पीछे जाना होगा। यह वह समय था जब बंदरनुमा पूर्वजों के एक समूह से विकास की दो शाखाएं निकलीं - एक शाखा से चिम्पैंज़ी का विकास हुआ और दूसरी से मानव का। चिम्पैंज़ी के शरीर पर बालों का घना आवरण होता है और इन बालों के नीचे वाली त्वचा एकदम हल्के रंग की होती है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इनके पूर्वजों और शुरुआती मानवों के शरीर पर भी घने बाल रहे होंगे और त्वचा हल्के रंग की।

किंतु अपने विकास के दौरान मानव ने यह बालदार चोला गंवा दिया। ऐसा उसने क्यों किया, इसके बारे में कई अनुमान लगाए गए हैं किंतु यहां उनकी चर्चा करना संभव नहीं है। परिणाम यह हुआ कि मानव की सफेद त्वचा नंगी हो गई। इससे तत्कालीन मानव को जो भी फायदा हुआ हो या न हुआ हो, उसकी जान के लिए एक गंभीर खतरा पैदा हो गया - त्वचा के कैंसर का।

सूर्य के प्रकाश में सात रंग होते हैं जिन्हें अलग-अलग करने पर ये सातों रंग एक निश्चित क्रम में दिखाई पड़ते हैं जिसे वर्णक्रम कहते हैं। इस वर्णक्रम के दो सिरों पर दो अदृश्य किरणें होती हैं - सबसे बाईं ओर (यानी बैंगनी रंग के पास) पराबैंगनी किरणें होती हैं तो सबसे दाईं ओर (यानी लाल रंग के पास) अवरक्त किरणें होती हैं।

पराबैंगनी किरणें (जिन्हें अंग्रेज़ी में अल्ट्रावायलेट किरणें कहते हैं) बहुत अधिक खुराफाती होती हैं। आप यदि घर में हों या किसी पेड़ की छाया में खड़े हों या बादल छाए हों तो सूर्य का प्रकाश आप तक नहीं पहुंच पाता। किंतु पराबैंगनी किरणों के लिए ऐसी कोई रोक-टोक नहीं होती। चाहे धूप हो न हो, यदि दिन का समय हो तो पराबैंगनी किरणें पृथ्वी की सतह पर पहुंचती ही रहती हैं, घरों के भीतर भी।

पराबैंगनी किरणों की खुराफात की हद तब हो जाती है जब ये मानव की त्वचा को जलाना शुरू कर देती हैं। इससे त्वचा पर काले धब्बे पड़ जाते हैं जिन्हें सनबर्न कहते हैं। त्वचा जितनी अधिक गोरी होगी सनबर्न का खतरा उतना अधिक होगा।

यह एक आम अनुभव है कि धूप में अधिक समय तक रहने से त्वचा में एक प्रकार का कालापन आ जाता है। इसका कारण आगे चलकर स्पष्ट होगा। पराबैंगनी किरणें

केवल सनबर्न तक ही नहीं रुकतीं, वे सनबर्न को त्वचा के कैंसर में बदल सकती हैं। त्वचा के कैंसर तीन प्रकार के होते हैं। इनमें से दो - बेसल कोशिकाओं और स्क्वामस कोशिकाओं के कैंसर संसार के सभी भागों में कई वृद्ध व्यक्तियों में पाए जाते हैं, किंतु ये अधिक हानिकारक नहीं होते। तीसरे प्रकार के कैंसर को मैलिग्नेन्ट मेलानोमा कहते हैं। यह जानलेवा होता है।

सुदूर अतीत में जब मानव की नंगी चमड़ी पर पराबैंगनी किरणें पड़ने लगीं तब त्वचा के कैंसर से बहुत अधिक मौतें होने लगीं। अतः यह ज़रूरी था कि पराबैंगनी किरणों के दुष्प्रभाव से बचने के लिए कोई तरीका हो।

जैव विकास के दौरान जीवधारियों पर ऐसे दबाव आते रहते हैं और उनके उपाय ढूंढे जाते रहते हैं। जैव विकास में उपाय ढूंढने का तरीका यह है कि किसी भी आबादी में विविधता हो। उस विविधता में से ही प्रकृति सबसे अनुकूल किस्म को तरजीह देती है। इस तरह से वह गुण धीरे-धीरे पूरी आबादी में नज़र आने लगता है। यदि वह गुण पहले से मौजूद न हो तो प्रकृति नई समस्या आने पर नया गुण पैदा नहीं कर सकती। वह तो पहले से उपलब्ध खज़ाने में से चुनती भर है।

पराबैंगनी किरणों के हमले के खिलाफ प्रकृति ने उन मानव सदस्यों को तरजीह दी जिनके शरीर में मेलानीन नामक काले रंग के पदार्थ का निर्माण होता था। मेलानिन विशिष्ट कोशिकाओं के भीतर होता है जिन्हें मेलानोसाइट कहते हैं। मेलानोसाइट त्वचा की निचली सतह में फैले रहते हैं और पराबैंगनी किरणों को त्वचा के भीतर घुसने से रोकते हैं। इसी चयन का नतीजा है कि गर्म प्रदेशों, जहां धूप की तीव्रता अधिक होती है, के निवासियों की त्वचा में मेलानिन अधिक मात्रा में पाया जाता है।

ब्रिटेन के कैन्सर रिसर्च इंस्टीट्यूट के डॉ. मेल ग्रीव्ज़ ने मेलानिन न होने और त्वचा के कैंसर के बीच सम्बंध का अध्ययन करने के लिए अफ्रीका के ऐसे निवासियों का अध्ययन किया जो वर्णकहीन होते हैं। ऐसे व्यक्तियों में जन्म से ही मेलानिन का विकास नहीं होता और उनकी त्वचा पूरी तरह सफेद होती है। इन्हें अंग्रेज़ी में एल्बीनो कहते हैं। यह अवस्था मेलानिन बनाने वाले जीन में गड़बड़ी के कारण होती है और आनुवंशिक होती है यानी अगली पीढ़ियों में आ सकती है।

इसी प्रकार की एक और अवस्था पाई जाती है जिसे सफेद कोढ़ कहते हैं। इसमें जन्म के बाद त्वचा का मेलानिन नष्ट होने लगता है और त्वचा पर सफेद चकत्ते उभरने लगते हैं। इसे अंग्रेज़ी में ल्यूकोडर्मा कहते हैं। यह न तो कोई गंभीर रोग है न छूत का रोग है और न आनुवंशिक है।

अफ्रीका के अधिकांश भागों में वर्णकहीन व्यक्तियों के खिलाफ पूर्वाग्रह होने और उनके सामाजिक बहिष्कार किए जाने के कारण इस अवस्था के बारे में जानकारी मिलना मुश्किल होता है। फिर भी डॉ. ग्रीव्ज़ नाइज़ीरिया से 512 प्रकरणों की जानकारी प्राप्त करने में सफल रहे। इनमें से लगभग आधे व्यक्ति 26 वर्ष की आयु तक त्वचा के कैंसर का शिकार हो चुके थे। बाद में तन्ज़ानिया में किए गए अध्ययन से पता चला कि 125 प्रकरणों में से आधे व्यक्तियों को 20 वर्ष की आयु तक त्वचा का कैंसर हो चुका था। तीसरा अध्ययन दक्षिण अफ्रीका में हुआ जिसका निष्कर्ष यह था कि एक वर्णकहीन अफ्रीकावासी को सामान्य रंग वाले अफ्रीकावासी की तुलना में त्वचा का कैंसर होने की संभावना एक हज़ार गुना अधिक होती है। चौथे अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि भूमध्यरैखीय अफ्रीका में रहने वाले वर्णकहीन व्यक्तियों में से लगभग 90 प्रतिशत 30 वर्ष की आयु तक पहुंचने से पहले ही त्वचा के कैंसर के कारण मौत का शिकार हो जाते हैं।

कई वैज्ञानिकों का मत है कि त्वचा के कैंसर का दबाव मेलानिन के विकास के लिए अकेला कारण नहीं हो सकता, इसके लिए अन्य कारक भी ज़िम्मेदार होते हैं। आखिर ठंडे प्रदेशों में रहने वाले वृद्ध व्यक्तियों में भी बेसल और स्क्वामस कोशिकाओं के कैंसर पाए जाते हैं। किंतु इसके विपरीत यह भी सही है कि ठंडे प्रदेशों में मॅलिग्नन्ट मेलानोमा बहुत कम पाया जाता है। अफ्रिकी देशों में वर्णकहीन व्यक्तियों में इस रोग की बहुलता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि त्वचा के कैंसर का खतरा मेलानिन के विकास का एक सशक्त कारण रहा होगा।

यहां सवाल यह उठता है कि ठंडे प्रदेशों के निवासियों की त्वचा में मेलानिन कम क्यों होता है? सूर्य के प्रकाश की सहायता से शरीर में विटामिन डी बनता है। ठंडे प्रदेशों में सूर्य की किरणें इतनी तीव्र नहीं होतीं कि शरीर में यह विटामिन पर्याप्त मात्रा में बन सके। अतः जब मानव इन प्रदेशों में पहुंचा तब वे इंसान लाभ की स्थिति में रहे जिनकी त्वचा में मेलानिन कुछ कम होता है। किंतु जब कोई गोरा व्यक्ति गर्म प्रदेश में अधिक समय के लिए रहता है तब उसे त्वचा के कैंसर का खतरा अधिक होता है।

काला रंग बना ही क्यों? इस सवाल का जवाब तो पता नहीं मगर ज़ाहिर है इसकी बदौलत हम त्वचा के कैंसर से बच पाते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***